Himalayan Journal of Social Sciences & Humanities
(A Peer Reviewed Journal of Society for Himalayan Action Research and Development)
ISSN: 0975-9891

नेपाल–कम्पनी युद्ध (सन 1814–15ई0) : एक कूटनीतिक–सामरिक अध्ययन

रेहाना ज़ैदी एवं एस.ए.एच.ज़ैदी
इतिहास विभाग, हे0न0ब0गढ़वाल विश्वविद्यालय परिसर, पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

Manuscript Info

Manuscript History

Received: 10.07.2016
Revised: 28.09.2016
Accepted: 05.12.2016

कुंजी शब्द–

नेपाल–कम्पनी युद्ध (सन 1815)
सामरिक–कूटनीतिक अध्ययन

सारांश–

अधिकांश पाश्चात्य इतिहास लेखकों के ग्रन्थों एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों द्वारा लिखित गज़ेटियर्स द्वारा यह प्रचार किया गया है कि नेपाल के गोरखों के उत्पीड़न से मध्य हिमालयी क्षेत्र की जनता को मुक्ति दिलाने एवं गोरखों द्वारा निर्वासित इस क्षेत्र के राजाओं को पुनः उनके पैतृक राज्यों में प्रस्थापित करने के लिए सन् 1814 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने नेपाल के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया और मध्य हिमालयी क्षेत्र (सिरमौर,गढ़वाल एवं कुमाऊँ) से गोरखों के उत्पीड़नकारी शासन का उन्मूलन कर इस क्षेत्र के राजाओं को इनके राज्यों में पुनर्स्थापित कर दिया, परन्तु इस आंग्ल–नेपाल युद्ध के वास्तविक कारण कुछ और ही थे।

प्रस्तुत आलेख में सन् 1750 से 1815 की अवधि में मध्य हिमालयी क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित करने की होड़ में व्यस्त ईस्ट इंडिया कम्पनी एवं नेपाल के बीच हुए संघर्ष के वास्तविक कारणों, उक्त दोनों साम्राज्यवादी शक्तियों के आर्थिक–राजनीतिक स्वार्थों एवं कूटनीतिक–सामरिक घात–प्रतिघात का अध्ययन–विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान समय में भारत के उत्तर में हिमालयी भू–भाग के केन्द्र में स्थित 1,41,577 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में विस्तृत देश को नेपाल कहा जाता है, किन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी में नेपाल राज्य केवल कोसी और त्रिशुली नदी की ढालों तक सीमित था। इस घाटी का नाम वहाँ बसी '' नेवार '' जाति के नाम पर पड़ा। नेवरों के आधिपत्य भू–क्षेत्र से पश्चिम की ओर काली नदी के पूर्वी तट तक का पर्वतीय प्रदेश चौबीसी कहलाता था। यह प्रदेश चौबीस ठकुराइयों में विभक्त था। चौबीसी ठकुराइयों के अन्तर्गत कास्सी नामक एक ठकुराई थी। इस कास्सी ठकुराई के अधीन गंडक नदी के संग्रहण क्षेत्र में ''गोरखा'' नामक एक ऊबड़–खाबड़ राज्य था,जो नेपाल घाटी के उत्तर–पश्चिम में अवस्थित था। इसका मुख्यालय गोरखानगर था। इसका नामकरण सिद्ध योगी गोरखनाथ के नाम पर हुआ था।

© SHARAD

इस छोटे से गोरखा राज्य के विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण का श्रेय **नेपाली नेपोलियन** कहे जाने वाले गोरखा राजा **पृथ्वीनारायणशाह (सन् 1742–1775)**को जाता है। उसने सम्पूर्ण नेपाल घाटी को जीत कर गोरखा राज्य को विशाल नेपाल राज्य में परिवर्तित कर दिया। कालान्तर में उसके उत्तराधिकारियों ने कुमाऊँ, गढ़वाल एवं सिरमौर पर विजय प्राप्त कर नेपाली साम्राज्य की पश्चिमी सीमा का विस्तार काँगड़ा तक कर लिया।

गोरखा शासक पृथ्वीनारायणशाह के काल में गोरखा शक्ति के उदय एवं नेपाल घाटी पर स्थापित होते जा रहे गोरखा आधिपत्य ने कम्पनी प्रशासन को चिंतित कर दिया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी नेपाल के माध्यम से अपना व्यापार तिब्बत एवं चीन में फैलाना चाहती थी।[3] नेवार राजाओं ने अपने अधीन क्षेत्रों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारिक प्रतिनिधियों को जो सुविधायें प्रदान की हुई थीं,वह गोरखा सेनाओं की धेराबन्दी के कारण समाप्त होने लगी थीं। काठमाण्डू के नेवार राजा जयप्रकाश मल्ल ने गोरखों के विरुद्ध ईस्ट इंडिया कम्पनी से सैनिक सहायता मांगीं। कम्पनी प्रशासन ने अपने व्यापारिक हितों के लिए जयप्रकाश मल्ल को सहायता प्रदान करने का निर्णय लिया। कैप्टन किनलाक 2800 सैनिकों के साथ काठमाण्डू पहुँचा,परन्तु पराजित हो कर लौटा।[4] गोरखों द्वारा पराजित नेपाल घाटी के अन्य राजाओं ने पुनः कम्पनी प्रशासन से गोरखों के विरुद्ध सहायता, मांगी,परन्तु कम्पनी प्रशासन ने गोरखों से उलझने के स्थान पर मैदानी भू–भागों में नवविजित प्रदेशों पर अधिक ध्यान देना ही उचित समझा। इसी बीच गोरखों ने सम्पूर्ण नेपाल घाटी पर प्रभुत्व स्थापित कर अपनी शक्ति में इतनी अधिक वृद्धि कर ली कि उनकी सेनाओं ने सन् 1790 में सरलता से कुमाऊँ पर अधिकार कर लिया।[5]

नेपाल–तिब्बत युद्ध (सन 1791) एवं नेपाल–चीन युद्ध (सन 1791–92) ने शीघ्र ही ईस्ट इंडिया कम्पनी को इस क्षेत्र में अपने व्यापारिक हितों को सुरक्षित करने का अवसर प्रदान कर दिया। फलस्वरूप 1 मार्च,1792 को नेपाल के गोरखा शासक एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच एक व्यापारिक संधि हो गई, परन्तु यह संधि भी अल्पकालिक सिद्ध हुई।[6] तपश्चात् 26 अप्रैल,1801 को कम्पनी प्रशासन एवं नेपाल नरेश बीच एक और व्यापारिक संधि हुई। यह संधि भी असफल रही।[7]

कैप्टन नाकस[8] ने गर्वनर जनरल को यह सुझाव दिया कि नेपाल नरेश से संधि करने के स्थान पर उचित होगा यदि कम्पनी नेपाल द्वारा नवविजित कुमाऊँ पर बलात् अधिकार कर ले और वहाँ से तिब्बत और चीन को जाने वाले मार्गों से अपने व्यापार को संचालित करे। कम्पनी प्रशासन उस समय मराठों के साथ उलझा हुआ था।अतः कम्पनी ने एक ही समय में नेपाल एवं मराठों के साथ युद्ध करना उचित नहीं समझा।

सन् 1804 में गढ़वाल एवं 1806 में सिरमौर पर नेपाली सेनाओं द्वारा अधिकार कर लेने के पश्चात् नेपाल राज्य की पश्चिमी–दक्षिणी सीमा कम्पनी के अधीन भू–प्रदेशों की सीमा से मिल गई थी। नेपाली सेनायें कुमाऊँ पर सन् 1790 में ही अधिकार कर चुकी थी। नेपाली राज्य के इस विस्तार के फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन अवध राज्य की उत्तरी सीमा कुमाऊँ की तराई में नेपाल राज्य की दक्षिणी सीमा से मिल गई। कमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र नेपाल राज्य में थे और तराई पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार था। पूर्व की दिशा में तराई क्षेत्र में अवस्थित गोंडा एवं गोरखपुर सीमा पर स्थित बुटवल,सारन स्यूराज के इलाकों पर नेपाल नरेश और कम्पनी प्रशासन दोनों ही अपने अपने दावे कर रहे थे। यही स्थिति पश्चिमी दिशा में भी थी। गढ़वाल के भाबर में हरिद्वार पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार था और देहरादून नेपाल नरेश के अधिकार में था। सहारनपुर के ऊपरी भाग नेपाल नरेश के अधिकार में थे और मैदानी भूभाग पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार था।[9]

सन् 1806 से 1810 तक ईस्ट इंडिया कम्पनी की यह नीति थी कि यदि नेपाली सेनायें मध्य हिमालयी क्षेत्र के पर्वतीय राजाओं के केवल पहाड़ी इलाकों पर ही अधिकार करती रहें और इन राज्यों के तराई–भाबर क्षेत्रों में अतिक्रमण न करें,तो कम्पनी को कोई आपत्ति नहीं है।[10] सन 1810 तक नेपाली सेनायें पश्चिम में कांगड़ा से लेकर पूर्व में कुमाऊँ तक के पर्वतीय क्षेत्र को जीत चुकी थीं। अब उनके पास तराई क्षेत्रों पर अधिकार करने के लिए पर्याप्त समय भी था और संसाधन भी। अतः नेपाल नरेश ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के सम्मुख यह दावा प्रस्तुत किया कि नेपाली सेनाओं ने जिन पर्वतीय राज्यों पर विजय प्राप्त की है,उनके तराई प्रदेशों पर भी नेपाल नरेश का अधिकार माना जाये, क्योंकि वह प्रदेश भी इन राज्यों के ही अंग हैं।[11]कम्पनी ने इस दावे को नकार दिया और नेपाल नरेश को चेतावनी दे दी कि यदि तराई प्रदेशों में नेपाली सेनायें अतिक्रमण का प्रयास करेगीं,तब कम्पनी उसका सशस्त्र विरोध करेगी, जिसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व नेपाल का होगा।[12]

सन् 1810–12 के बीच नेपाली सेनाओं ने धीमी गति से परन्तु निरन्तर तराई–भाबर के उन क्षेत्रों में अतिक्रमण जारी रखा,जो ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन थे। इस बीच गोरखपुर के उत्तर में स्थित तराई क्षेत्र में नेपाली सेनाओं ने कुछ गांवों पर अधिकार कर लिया। फलस्वरूप बेतिया (सारन) के ज़मींदार वीर किशोर सिंह के सैनिकों ने नेपाली सैनिकों पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला और रौतिहाट का कोष लूट लिया। नेपाल नरेश ने कम्पनी प्रशासन से इस घटना का कठोर शब्दों में प्रतिवाद किया,परन्तु कम्पनी ने इसके लिए नेपाली सैनिकों को ही दोषी ठहराया। कुछ दिन पश्चात् ही नेपाली सेना ने इस क्षेत्र में और भीतर घुस कर 22 गांवों पर अधिकार कर लिया।[13] इस सीमा विवाद के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए नेपाली सेनानायक एवं कम्पनी प्रशासन के बीच वार्ता चल ही रही थी कि नेपाली सेना ने निकटवर्ती क्षेत्र सारन के कुछ और गांवों पर अधिकार कर लिया। फलस्वरूप समझौता वार्ता अवरुद्ध हो गई। गर्वनर जनरल लार्ड मिन्टों ने नेपाल नरेश को चेतावनी दी कि यदि इसकी क्षतिपूर्ति नेपाल द्वारा तुरन्त न किय जाने पर कम्पनी प्रशासन नेपाल के विरुद्ध कठोर कदम उठायेगा। इसी समय लार्ड मिन्टो को इंग्लैंड बुला लिया गया और उसके उत्तराधिकारी लार्ड हेस्टिंग्स को नेपाल के विरुद्ध रणनीति तय करने का दायित्व सौंपा गया।[14]

लार्ड हेस्टिंगस ने इस सीमा विवाद के समाधान के लिए ब्राडशा को नियुक्त किया। इस विषय में ब्राडशा एवं नेपाल नरेश के प्रतिनिधियों के बीच दो दौर की वर्ता हुई, परन्तु वार्ता असफल रही। गर्वनर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स ने कम्पनी की सेना को युद्ध के लिए सतर्क कर दिया और नेपाली सेनाओं को पीछे हटने की चेतावनी दी।[15]

अन्ततः 22 अप्रैल 1814 को गोरखपुर के मजिस्ट्रेट के सशस्त्र बल ने बुटवल एवं स्यूराज के इलाकों पर अधिकार कर लिया। कम्पनी की इस सैनिक कार्रवाई से नेपाल में हलचल मच गई। नेपाल नरेश ने अपने भरदारों (सामन्तों) से कम्पनी के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई के विषय में विचार विमर्श किया।यद्यपि प्रधानमन्त्री भीमसेन थापा और उसका पिता अम्बर सिंह थापा कम्पनी के साथ तुरन्त युद्ध आरम्भ करने के पक्ष में थे,परन्तु पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में नियुक्त नेपाली सेनापति अमर सिंह थापा युद्ध के पक्ष में नहीं था। उसने नेपाल नरेश को सूचित किया कि अभी नेपाली सेनाओं द्वारा नवविजित प्रदेशों में हमारी स्थिति युद्ध के अनूकूल नहीं है। इसके विपरीत प्रधानमन्त्री भीमसेन थापा और उसके पिता अम्बर सिंह थापा का विचार था कि अपने विजित प्रदेशों को बिना युद्ध किये ही कम्पनी को सौंप देना सर्वथा कायरता होगी।

उसने नेपाल नरेश को परामर्श दिया कि कम्पनी के साथ संधि तो किसी भी समय हो सकती है। यदि हमें युद्ध में सफलता नहीं मिलेगी,तो हम परिस्थितियों के अनुकूल कम्पनी के साथ समझौता कर सकते हैं। प्रथम मुटभेड़ में ही कम्पनी के सम्मुख घुटने टेक देना उचित नहीं है।[16] अन्ततः नेपाल दरबार ने निर्णय लिया कि हमें युद्ध के लिए तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए

,परन्तु कम्पनी प्रशासन के सामने यही प्रकट करना चाहिए कि हम युद्ध के इच्छुक नहीं हैं। नेपाली सेनानायकों ने पूर्वी तराई क्षेत्र में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य से जुड़ी 1100 किलोमीटर लम्बी सीमा पर सैनिक चौकियाँ स्थापित करने में तत्परता से कार्य किया। 21 मई,1814 को इस सीमा पर नेपाल से पहुँची अतिरिक्त सेना ने कम्पनी के तीन थानों पर अचानक आक्रमण कर कम्पनी के सैनिकों को मार डाला। इस घटना से नेपाल एवं कम्पनी के बीच सम्बन्ध अत्यधिक कटु हो गये।[17]

। ।

इस समय तक ईस्ट इंडिया कम्पनी नेपाल के युद्ध साथ करने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो चुकी थी। अतः कम्पनी प्रशासन कूटनीतिक एवं सामरिक व्यवस्थाओं में जुट गया। कम्पनी प्रशासकों ने मध्य हिमालयी क्षेत्र से जो सूचनायें एकत्र की थीं,उनसे वह इस निश्कर्ष पर पहुँचा कि इस क्षेत्र की जनता नेपाली प्रशासकों से कुपित है। अतः यदि स्थानीय जनता को नेपाली प्रशासकों के विरुद्ध भड़काया जा सके और नेपाली सेना में सेवारत स्थानीय सैनिकों को नेपाली सेना से अलग कर लिया जाये,तब नेपाली सेनाओं को पराजित करना अधिक सुगम हो जायेगा। इसके लिए वह स्थानीय राजा उपयोगी हो सकते थे,जिनकों नेपाली सेनाओं ने सत्ताच्युत करके निवार्सित कर दिया था।[18]

इस कूटनीतिक योजना को मेजर जनरल डेविड अख्तर लोनी, कम्पनी के पौलिटिकल ऐजेन्ट विलयम फ्रेज़र एवं गर्वनर जनरल के ऐजेन्ट कौलब्रुक ने सफल बना लिया। फलस्वरूप सिरमौर के निर्वासित अवयस्क राजा के संरक्षक कुवंर किशन सिंह, गढ़वाल का निर्वासित राजा सुदर्शनशाह अपने पैतृक राज्यों से नेपाली आधिपत्य के उन्मूलन के लिए कम्पनी के साथ आ गये।[19] कुमाऊँ के एक शक्तिशाली पूर्व राज्याधिकारी हर्षदेव जोशी ने भी कम्पनी प्रशासकों को आश्वस्त किया कि वह देहरादून के उत्तर में यमुना घाटी के संकरे पहाड़ी मार्गों की नाकाबन्दी करके कांगड़ा एवं सिरमौर में एकत्र नेपाली सेना को पूर्वी दिशा में बढ़ने से रोक देगा। हर्षदेव जोशी के परामर्श पर कुमाऊँ के निर्वासित राजा लालसिंह को कम्पनी प्रशासकों ने इस योजना एवं इस प्रकरण से अलग रखा।[20]

ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रशासकों ने जो योजना बनाई थी,वह उनकी कूटनीतिक दक्षता एवं राजनीतिक परिपक्वता को परिलक्षित करती है। सन 1811से 1814 तक मध्य हिमालयी क्षेत्र में नवस्थापित गोरखा राज्य के सम्बन्ध में जो सूचनायें ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजनीतिक प्रतिनिधियों ने एकत्र की थीं ,उनका गहनता से अध्ययन कर गर्वनर जनरल हेस्टिंग्स इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि गढ़वाल,कुमाऊँ एवं सिरमौर की जनता गोरखों के प्रशासन से असंतुष्ट है। अतः उसने यह प्रचार किया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थानीय जनता को गोरखों के अत्याचारी प्रशासन से मुक्ति दिलाने के लिए ही नेपाल के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर रही है। हेस्टिंग्स ने इस पर्वतीय अंचल की प्रजा की राजभक्ति का कूटनीतिक लाभ उठाने की भी योजना बनाई। अतः उसने यह प्रचार भी किया कि गोरखों की पराजय के बाद इस क्षेत्र के निर्वासित राजाओं को पुनः राजसिंहासन पर बैठाया जायेगा। हेस्टिंग्स की यह नीति दुहरा लाभ उठाने की थी। एक ओर तो स्थानीय जनता गोरखों के अत्याचारों से मुक्ति की आशा में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ सहयोग करना आरम्भ कर देती और दूसरी ओर गोरखों द्वारा सत्ताच्युत स्थानीय राजा अपने खोये हुए राज्य पुनः प्राप्ति की आशा में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ सहयोग करना आरम्भकर देते ।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए मध्य हिमालयी क्षेत्र से गोरखा उन्मूलन के पश्चात प्राप्त होने वाले उजाड़ एवं आयविहीन भू–प्रदेशों की व्यवस्था करना भी एक विकट समस्या होती। इसके समाधान के लिए हेस्टिंग्स ने यह योजना बनाई कि इस क्षेत्र के निर्वासित राजाओं को उनके राज्य उन्हें वापस मिल जाने का प्रलोभन दे कर,उन राजाओं और उनकी राजभक्त प्रजा का सहयोग गोरखों के विरुद्ध प्राप्त किया जाये। गोरखों की पराजय के पश्चात इस क्षेत्र में प्राप्त उपजाऊ एवं लाभप्रद

भूभागों को युद्ध व्यय की क्षतिपूर्ति के बहाने ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन राज्य में मिला लिया जाये तथा अलाभप्रद भू–क्षेत्रों को निर्वासित राजाओं को उनके पैतृक राज्यों के रूप में उन्हें लौटा दिया जाये। इस योजना के क्रियान्वयन से भी कम्पनी प्रशासन को दुहरे लाभ की आशा थी। एक ओर वह निर्वासित राजाओं को उनके पैतृक राज्य लौटाये जाने के अपने वायेदे को निभाने का दिखावा कर सकती थी और दूसरी ओर वह दुर्गम एवं उजाड़ आयविहीन भू–प्रदेशों की प्रशासन व्यवस्था के व्यय भार से भी बच सकती थी।

हेस्टिंग्स की योजना थी कि सिरमौर की उपजाऊ कियारदादून घाटी एवं गढ़वाल की उपजाऊ घाटी देहरादून का विलय ईस्ट इंडिया कम्पनी राज्य में कर लिया जायेगा और शेष पर्वतीय भू–भाग सिरमौर तथा गढ़वाल के राजाओं को सौंप दिये जायेंगे। इसके विपरीत सम्पूर्ण कुमाऊँ को कम्पनी राज्य में मिला लिये जाने की योजना बनाई गई, क्योंकि कुमाऊँ का तराई प्रदेश अत्यधिक उपजाऊ था और उसके पर्वतीय प्रदेश से तिब्बत और चीन के लिए व्यापारिक मार्ग जाते थे। हेस्टिंग्स ने अपनी इस कूटनीतिक योजना को गुप्त बनाये रखा और यह प्रचार आरम्भ किया ईस्ट इंडिया कम्पनी गोरखों की पराजय के पश्चात इस क्षेत्र के स्थानीय राजाओं को पुनः सत्तासीन कर देगी। गोरखों की पराजय के पश्चात स्थानीय जनता अपने परम्परागत अधिकारों को पुनः प्राप्त कर सकेगी और अतीत की भांति अपना जीवन यापन कर सकेगी। इस योजना के क्रियान्वयन के लिए विलयम .फ्रेज़र को कम्पनी का राजनीतिक प्रतिनिधि नियुक्त किया गया।

दिल्ली रेज़ीडेन्सी ने निर्देश दिये कि वह गढ़वाल की जनता को गोरखों की दासता से मुक्त कराने का आश्वासन दे। वह ऐसे उपाये करे, जिससे गढ़वाली प्रजा गोरखों के विरुद्ध ईस्ट इंडिया कम्पनी का साथ देने के लिए तैयार हो जाये। दिल्ली रेज़ीडेन्सी ने .फ्रेज़र को कूटनीतिक निर्देश देते हुए सचेत किया कि वह गढ़वाल के निर्वासित राजपरिवार को कोई ऐसा आश्वासन न दे कि गोरखों के विरुद्ध कम्पनी की सहायता करने के बदले में गोरखों की पराजय के पश्चात गढ़वाल के राजपरिवार को उसके पैतृक राज्य का कितना और कौन सा भू–भाग कम्पनी द्वारा दिया जायेगा ? क्योंकि गोरखों की पराजय के पश्चात सिरमौर के कियारदादून और गढ़वाल के देहरादून भू–क्षेत्रों का विलय कम्पनीराज में किये जाने का निर्णय लिया जा चुका है।[21] कम्पनी प्रशासन ने गोरखों की पराजय के पश्चात कुमाऊँ के सम्पूर्ण भू–प्रदेश को कम्पनीराज्य में मिला लिए जाने का निर्णय भी ले लिया था। यही कारण था कि कम्पनी प्रशासन ने कुमाऊँ के चन्द राजवंश के उत्तराधिकारी लाल सिंह से गोरखों के विरुद्ध कोई सहायता नहीं मांगी और उसे नेपाल–कम्पनी युद्ध से अलग ही रखा।[22]

उक्त कूटनीतिक एवं सामरिक याजनाओं के अनुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने नेपाल के गोरखों के विरुद्ध एक साथ चार मोर्चों पर युद्ध आरम्भ किया। यद्यपि कम्पनी प्रशासन ने इस युद्ध की अधिकारिक घोषणा एक नवम्बर,1814 को की,परन्तु मेजर जनरल गिलेप्सी और ले0 र्क0 मौबे के अधीन कम्पनी की सेना ने अग्रिम कार्रवाई करते हुए 19 अक्टूबर,1814 को ही सिरमौर की तलहटी में अवस्थित कालसी दुर्ग पर अधिकार कर लिया [23]

इस सेना ने 21 अक्टूबर,1814 को दून घाटी और देहरा कस्बे पर भी आधिपत्य स्थापित कर लिया। तत्पश्चात इस सेना ने सिरमौर की राजधानी नाहन पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। नालापानी नामक स्थान पर गोरखों एवं कम्पनी की सेना के बीच भयंकर संघर्ष हुआ। अन्ततः 24 दिसम्बर,1814 को कम्पनी की सेना को नाहन पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त हो गई।[24] 26 अप्रैल,1815 को कुमाऊँ की राजधानी अल्मोड़ा पर भी कम्पनी की सेना के अधिकार कर लेने के पश्चात 24 अक्टूबर 1814 को आरम्भ हुआ नेपाल –कम्पनी युद्ध समाप्त हो गया।[25]

सिरमौर,गढ़वाल एवं कुमाऊँ में गोरखा सेनाओं को पराजित करने के पश्चात कम्पनी प्रशासन ने अपनी शर्तों पर नेपाल नरेश को सन्धि करने के लिए बाध्य किया। गर्वनर जनरल हेस्टिंग्स केवल मध्य हिमालयी क्षेत्र की प्राप्ति से ही सन्तुष्ट नहीं था। वह नेपाल के पूर्वी तराई क्षेत्र में अवस्थित गोण्डा एवं बहराइच के सीमावर्ती समस्त विवादास्पद भू–क्षेत्रों, काली नदी से तिस्ता नदी तक समस्त तराई पटटी तथा काली नदी के पश्चिम के समस्त पर्वतीय और पाद प्रदेश पर कम्पनी का आधिपत्य स्थायी रूप से स्थापित कराना चाहता था।[26] वह चाहता था कि नेपाल नरेश अपनी पराजय स्वीकार करे और इन भू–प्रदेशों पर अपना और अपने वंशजों का दावा सदा के लिए त्यागने की घोषणा करें। 28 मई,1815 को गर्वनर जनरल के प्रतिनिधि ले0 कर्नल ब्राडशा एवं नेपाल नरेश के प्रतिनिधि चन्द्रशेखर उपाध्याय के बीच सिगोली नामक स्थान पर सन्धि वार्ता आरम्भ हुई।[27]

नेपाल नरेश के प्रतिनिधि ने इतने अधिक विस्तृत भू–प्रदेश को त्यागने से इन्कार करते हुए संधि की शर्तों को अस्वीकार कर दिया। कुमाऊँ के पूर्व गोरखा प्रशासक बमशाह की मध्यस्थता से जुलाई 1815 में पुनः संधि वार्ता आरम्भ हुई। कम्पनी प्रशासन द्वारा नेपाल नरेश के सम्मुख पुनः वही शर्तें रखी गईं,परन्तु नेपाल नरेश ने उन्हें मानने से पुनः इन्कार कर दिया।[28] नेपाल नरेश द्वारा संधि के लिए सहमत न होने पर गर्वनर जनरल हेस्टिंग्स ने 22 जुलाई,1815 को नेपाल नरेश को धमकी देते हुए सूचित किया कि कम्पनी प्रशासन नेपाल के साथ युद्ध नहीं चाहता था, परन्तु नेपाल ने इस अनावश्यक युद्ध को कम्पनी पर थोपा है।अतः कम्पनी को इस युद्ध की क्षतिपूर्ति मांगने का पूर्ण अधिकार है और यह भू–प्रदेश नेपाल नरेश से युद्ध क्षतिपूर्ति हेतु ही मांगे जा रहे हैं। नेपाल नरेश संधि की शर्तों को मानने में जितना विलम्ब करेगा,क्षतिपूर्ति की मांग उतनी ही बढ़ती जायेगी और क्षतिपूर्ति को प्राप्त करने के लिए कम्पनी प्रशासन नेपाल के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करेगा। [29]

हेस्टिंग्स की धमकियों के पश्चात भी नेपाल नरेश संधि की शर्तों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। नेपाल दरबार के थापा दल ने नरेश को सुझाव दिया कि तिब्बत के लामाओं एवं चीन से सहायता प्राप्त कर कम्पनी के विरुद्ध पुनः युद्ध आरम्भ किया जाये। इस दल का विचार था कि वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाने से कम्पनी की सेनाओं को पीछे हटना पड़ेगा। अतः नेपाली सेना को युद्ध की तैयारी के लिए समय मिल जायेगा। इस रणनीति से आशान्वित होकर नेपाल नरेश ने संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये।[30] अन्ततः कम्पनी प्रशासन ने नेपाल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस द्वितीय नेपाल अभियान का दायित्व मेजर जनरल डेविड अख़्तर लोनी को सौंपा गया। उसने नवम्बर, 1815 में 35000 सैनिकों एवं 100 तोपों की सुसंगठित सेना के साथ नेपाल पर आक्रमण किया।[31]

नेपाल नरेश ने कम्पनी के विरुद्ध तिब्बत एवं चीन से जिस सैनिक सहायता की आशा की थी ,वह प्राप्त नहीं हुई। अतः नेपाल नरेश ने कम्पनी की शर्तों को स्वीकार कर संधिपत्र पर हस्ताक्षर करना ही हितकारी समझा। 28 मई, 1814 को जो संधिपत्र सिगोली में नेपाल नरेश के प्रतिनिधियों के सम्मुख रखा गया था,उसी पर 4 मार्च, 1815 को नेपाल नरेश ने हस्ताक्षर किये। अतः यह संधि सिगोली संधि के नाम से ही प्रसिद्ध हुई।[32] इस संधि की नौ शर्तें थीं, जिनका सार यह था कि नवम्बर, 1814 को नेपाल–कम्पनी युद्ध आरम्भ होने से पूर्व जिन भू–क्षेत्रों पर स्वामित्व के प्रश्न पर नेपाल एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच विवाद चल रहा था तथा नेपाल–कम्पनी युद्ध के दौरान जिन भू–क्षेत्रों को कम्पनी ने नेपाली सेनाओं से छीना, उन पर से नेपाल नरेश ने अपना एवं अपने वंशजों का दावा सदा के लिए त्याग दिया।[33]

नेपाल–कम्पनी युद्ध के पश्चात जब गढ़वाल एवं सिरमौर के राजाओं ने कम्पनी प्रशासन से अपने पैतृक राज्यों की मांग की,तब कम्पनी प्रशासन ने अपनी पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार इन राजाओं से युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में इतनी बड़ी धनराशि की मांग करदी जिसका भुगतान करना इन राजाओं के लिए सम्भव ही न था। फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी ने

युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में इन राजाओं के उपजाऊ भू–प्रदेशों को हड़प कर उनका विलय कम्पनीराज्य में कर लिया।[34] कम्पनी प्रशासन ने कुमाऊँ के राजा के वंशज को कोई भू–भाग नहीं दिया और कुमाऊँ के सम्पूर्ण पर्वतीय एवं तराई प्रदेश को कम्पनीराज्य में मिला लिया गया ।[35]

III

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में नेपाल एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच अधिक से अधिक भू–प्रदेशों को हथियाने की जो दौड़ आरम्भ हुई थी, वह सन 1810 तक अपने चरम पर पहुँच गई। इस अवधि में जहाँ एक ओर नेपाल नरेश नेपाल के निकटवर्ती पर्वतीय क्षेत्रों में साम्राज्य विस्तार कर रहा था,वहीं कम्पनी प्रशासन इन क्षेत्रों के सन्निकट तराई एवं मैदानी क्षेत्रों को हस्तगत करता जा रहा था। इस साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा के फलस्वरुप पूर्वी दिशा में तिस्ता नदी से पश्चिम में सतलुज नदी के मध्यवर्ती समस्त पर्वतीय क्षेत्र नेपाल नरेश के अधिकार में आये और पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में गोरखपुर (उ0प्र0) तक विस्तृत सम्पूर्ण तराई पट्टी पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का आधिपत्य स्थापित हो गया। फलस्वरुप इन दोनों साम्राज्यवादी शक्तियों की सीमायें सैकड़ों मील तक एक दूसरे के सम्पर्क में आकर परस्पर उलझ गईं।

वास्तव में अधिक से अधिक भू–भागों पर अधिकार जमाने की होड़ में इन दोनों शक्तियों के पास इतना समय ही न था कि वह यह सोच पातीं कि कौन सा क्षेत्र किसके अधिकार में है? विजयाभियानों के पश्चात जब इस दिशा में सोचा गया , तब तक सब गड़बड़ हो गया था। साम्राज्य विस्तार की इस अन्धी दौड़ ने शीघ्र ही नेपाल एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच सीमा विवाद उत्पन्न कर दिया। यह सीमा विवाद अपनी प्रक्रिया के अनुरुप उत्तरोत्तर उग्र होता गया। जिसकी परणिति सन 1814–15 में नेपाल–कम्पनी युद्ध के रूप में हुई।

इन दोनों साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच हुए संघर्ष के लिए आर्थिक कारण भी उत्तरदायी थे। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ईस्ट इंडिया कम्पनी नेपाल के माध्यम से अपना व्यापार चीन एवं तिब्बत में फैलाना चाहती थी,परन्तु नेपाल नरेश इसके लिए तैयार नहीं था। यद्यपि सन 1792 एवं 1801 में नेपाल नरेश एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच व्यापारिक संधियाँ हुईं ,परन्तु वह असफल रहीं। यदि यह संधियाँ सफल हो जातीं और ईस्ट इंडिया कम्पनी को नेपाल के माध्यम से चीन एवं तिब्बत में अपने व्यापार को फैलाने की सुविधायें प्राप्त हो जातीं, तब सम्भवतः नेपाल–कम्पनी युद्ध नहीं होता।

व्यापारिक संधियों के असफल हो जाने पर भी ईस्ट इंडिया कम्पनी नेपाल के साथ शीघ्र युद्ध करने का निर्णय नहीं लेती, यदि नेपाली सेनायें मध्य हिमालयी क्षेत्र के पर्वतीय क्षेत्र को विजित करके उसके पाद–प्रदेश में अवस्थित उपजाऊ एवं सम्पन्न तराई प्रदेशों पर भी आधिपत्य स्थापित करने के प्रयास न करतीं।

नेपाल–कम्पनी युद्ध के पश्चात एक अज्ञात लेखक द्वारा रचित '' मिलेट्री स्कैच ऑफ गोरखावार इन इंडिया '' से ज्ञात होता है कि सन 1806 से 1810 तक ईस्ट इंडिया कम्पनी की यह नीति थी कि यदि नेपाली सेनायें मध्य हिमालयी क्षेत्र के राजाओं के केवल पर्वतीय इलाकों को ही हस्तगत करती हैं और इन राज्यों के तराई–भाबर क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करती हैं,तब कम्पनी को कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु यदि नेपाली सेनायें इन राज्यों के तराई–भाबर क्षेत्रों में भी कब्ज़ा जमाने का प्रयास करेंगीं, तब कम्पनी उसका सशस्त्र प्रतिरोध करेगी।[36] इस तथ्य से स्पष्ट है कि यदि कम्पनी प्रशासन मध्य हिमालयी क्षेत्र के राजाओं का शुभचिंतक था (जैसा कि उसने बाद में प्रचार किया), तब सन 1803 से 1806 की अवधि में ही वह उस समय नेपाली सेनाओं के विरुद्ध इन राजाओं की सहायता करता, जब नेपाली सेनायें इन राजाओं के राज्यों पर अधिकार कर रही थीं।

कम्पनी प्रशासन ने ऐसा न करके नेपाल के विरुद्ध तब युद्ध आरम्भ किया, जब नेपाली सेनाओं ने इन राज्यों की तलहटी में स्थित कम्पनी द्वारा अधिग्रहित क्षेत्रों पर अधिकार करने के प्रयास किये।

केवल अपने मैदानी सैनिकों के बल पर ईस्ट इंडिया कम्पनी इस पर्वतीय क्षेत्र में सैनिक सफलतायें अर्जित नहीं कर सकती थी। अतः कम्पनी प्रशासन के लिए आवश्यक हो गया कि वह इस दुर्गम क्षेत्र में अपने ऐसे स्थानीय मित्र बनाये, जो कम्पनी के लिए स्थानीय, सैनिक, सामरिक सूचनायें एवं सैन्य सहयोग उपलब्ध करा सकें और नेपाली गोरखों के विरुद्ध जनमत तैयार कर सकें। अतः ईस्ट इंडिया कम्पनी ने स्वयं को एक ऐसे मसीहा के रूप में प्रचारित किया, जो इस क्षेत्र की जनता को गोरखों के उत्पीढ़नकारी शासन से मुक्ति दिला सकती थी और जनता के अपने राजाओं को पुनः सत्तासीन कर सकती थी।

कम्पनी प्रशासन की लगभग सभी कूटनीतिक एवं सामरिक चालें सफल रहीं। नेपाल नरेश ईस्ट इंडिया कम्पनी की कूटनीतिक–सामरिक चालों की काट नहीं कर सका। कम्पनी प्रशासन ने स्थानीय जनता एवं स्थानीय राजाओं के सहयोग से गोरखों को पराजित कर नेपाल को अपनी शर्तों पर संधि करने के लिए बाध्य कर लिया। यद्यपि कम्पनी प्रशासन ने इन राजाओं के उपजाऊ भू–भागों को हड़प लिया था, फिर भी यह राजा कम्पनी प्रशासन के ऋणी रहे, क्योंकि उन्हें अपने पैतृक राज्यों के जो भू–भाग मिले, वह कम्पनी प्रशासन की कृपा से ही मिले थे।

गोरखा प्रशासक न तो मध्य हिमालयी क्षेत्र की प्रजा को ही अपने पक्ष में कर सके और न ही स्थानीय राजाओं को। इसके विपरीत ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रशासकों ने इस क्षेत्र में नियुक्त गोरखा प्रशासकों को भी धन एवं पद का लोभ देकर अपने पक्ष में करने के कई प्रयास किये,[37] जबकि नेपाल नरेश अपने भरदारों और दरबारियों की गुटबन्दियों और मतभेदों को भी समाप्त नहीं कर सका। वास्तव में गोरखे कूटनीतिक एवं सामरिक दोनों ही क्षेत्रों में असफल रहे। कम्पनी प्रशासन की एक साथ चार मोर्चों पर युद्ध आरम्भ कर देने की रणनीति ने गोरखों की सुरक्षात्मक एवं घात लगा कर युद्ध करने की परम्परागत युद्ध नीति को विफल कर दिया। ऐसी स्थिति में वह न तो अपनी गढ़ियों की सुरक्षा कर सके और न ही अन्य मोर्चों पर फंसे हुए अपने साथियों की। कम्पनी द्वारा इस युद्ध के लिए विशेष रूप से तैयार करायी गयी हल्की तोपों ने गोरखों की पराजय को अवश्यम्भावी बना दिया। कम्पनी सेनानायकों ने नेपाल–कुमाऊँ सीमा की नाकेबन्दी करके नेपाल से आने वाली अतिरिक्त गोरखा सेनाओं का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया। नेपाल नरेश ईस्ट कम्पनी के विरुद्ध चीन एवं तिब्बत से सैनिक सहायता प्राप्त करने में भी असफल रहा।

वस्तुतः सन 1814–15 में हुआ कम्पनी–नेपाल युद्ध किसी अचानक घटित घटना का परिणाम नहीं, बल्कि लगभग अर्द्ध शताब्दी तक चले उस शीत युद्ध का परिणाम था, जो इन दोनों साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच उत्रोत्तर गहराता गया और जिसने मध्य हिमालयी क्षेत्र को इस युद्ध की रणभूमि बना दिया।

इस युद्ध के प्रतिफलनस्वरूप इस दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र में ईस्ट इंडिया कम्पनी का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस क्षेत्र में अवस्थित गढ़वाल एवं सिरमौर राज्यों का जो बटवारा स्थानीय राजाओं एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच हुआ उस बटवारें ने इस क्षेत्र के भूगोल एवं भू–राजनीति दोनों को परिवर्तित कर दिया। कम्पनी प्रशासन ने कुमाऊँ के राजवंश को सत्ता से पूर्णतया बेदखल करके कुमाऊँ का विलय कम्पनीराज्य में कर लिया।[38] कम्पनी ने नेपाल को निर्णायक रूप से पराजित करके इस क्षेत्र में नेपाली साम्राज्यवाद की सम्भावनाओं को समाप्त कर दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी कूटनीतिक एवं सामरिक चालों से इस क्षेत्र में ब्रिटिश आधिपत्य की जो नीव रखी, वह लगभग सवा सौ वर्षों तक स्थिर रही।

सन्दर्भ :

1. ईडन, वेनस्टिार्ट, द गोरखा, पृ0 13, लन्दन, 1920.

.2. स्टीलर, लुडविग, एफ.,द राइज़ ऑफ द हाउस ऑफ गोरखा,पृ0 7–8, काठमाण्डू, 1975 एवं ज्ञावली, सूर्यविक्रम, पृथ्वीनारायणशाह, पृ0 27,दार्जिलिंग, 1935.

3. रमाकान्त,इन्डो–नेपाल रिलेशन्स,पृ0 4,दिल्ली,1979 एवं चौधरी,के.सी.,ऐंग्लो–नेपाल रिलेशन्स,पृ013, कल्कत्ता, 1960.

4. चौधरी, के.सी., वही, पृ0 23.

5. ईडन, वेनस्टिार्ट, वही, पृ0 15 एवं पांडे, बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास, पृ0 385,अल्मोड़ा, 1935.

6. सनवाल, बी.डी., नेपाल एण्ड द ईस्ट इंडिया कम्पनी, पृ0 73, दिल्ली, 1965.

7. चौधरी, के.सी.,वही, पृ0 15.

8. गर्वनर जनरल लार्ड बेलज़ली ने कैप्टन नाकस को नेपाल के साथ व्यापारिक संधि की सम्भावनायें तलाशने का दायित्व सौंपा था.

9–10. अज्ञात लेखक, मिलेट्री स्कैच ऑफ द गोरखावार, पृ0 46, लन्दन, 1922.

11–12. ईस्ट इंडिया कम्पनी एवं नेपाल के बीच सीमा विवाद के लिए देखें, सनवाल,बी.डी,वही, पृ0 115–120, 139–142.

13–15. 'नेरेटिव ऑफ द वार' सीक्रेट लैटर ऑफ लार्ड मोरिया,सनवाल, बी.डी.द्वारा उद्यृत, वही, पृ0 118, 139–142.

16. चितरंजन नेपाली, भीमसेन थापा रा तत्कालीन नेपाल, पृ0 22,काठमाण्डू, संवत, 2013.

17. जॉन प्रेम्बल, इन्वेज़न ऑफ नेपाल, पृ0 131,द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड, 1972.

18–22. सक्सैना, बी.पी., हिस्टौरिकल पेपर्स रिलेटिंग टु द कुमाऊँ, पृ0 2–3, 9,12–17, 117–23., इलाहाबाद, 1956, सक्सैना ने मध्य हिमालयी क्षेत्र में नेपाल–कम्पनी युद्ध से सम्बन्धित कम्पनी प्रशासकों के कूटनीतिक पत्रों के मसौदों का विवरण दियाहै। गढ़वाल के राजा सुदर्शनशाह एवं कम्पनी प्रशासकों के बीच हुई वार्ताओं एवंपत्र– व्यवहार आदि के विवरण के लिए देखें,रजिस्टर संख्या 4, टिहरी राज्य अभिलेखागार.

23 जॉन, प्रेम्बल, वही, पृ0 156 एवं कोक्स, जे.एल., पेपर रेस्पेकटिंग द नेपाल वॉर, पृ0 5, लन्दन, 1824

24 ईडन, वेनस्टिार्ट, वही, पृ0 16–17, ईडन के अनुसार इस संघर्ष में कम्पनी की सेना का मेजर जनरल गिलेस्पी,सेना के 30 अधिकारी और 500 सैनिक मारे गये।

25. एटकिन्सन, ई.टी., गज़ेटियर ऑफ हिमालयन डिस्ट्रिक्ट, भाग 2, पृ0 664, दिल्ली, 1973 एवं पांडे, बद्रीदत्त, वही, पृ0 429.

26–29. सनवाल, बी.डी.,वही, पृ0 202–203.

30–31. जॉन,प्रेम्बल, वही, पृ0 325–326.

32–33. सनवाल, बी.डी. वही, पृ0 330–332.

34–35. पांडे, बद्रीदत्त, वही, पृ0 433, सनवाल, बी.डी. वही, पृ0 115–120.

36. पांडे, बद्रीदत्त, वही, पृ0 407.

37. गढ़वाल के राजाओं की राजधानी श्रीनगर सहित वर्तमान पौड़ी गढ़वाल एवं चमोली जनपद कम्पनी की हड़प नीति का शिकार बने और कालान्तर में ब्रिटिश गढ़वाल कहलाये।देहरादून घाटी को अंग्रज़ों ने सहारनपुर ज़िले के साथ सम्बद्ध कर दिया। टिहरी शेष गढ़वाल की राजधानी बनी और यह राज्य टिहरी रियासत कहलाया जाने लगा।कम्पनी द्वारा हस्तगत किया गया कुमाऊँ राज्य कुमाँऊ कमिश्नरी में परिवर्तित हो गया। सिरमौर राज्य के जिन भू–भागों को कम्पनी ने हस्तगत किया था,उन्हें कालान्तर में शिमला और पंजाब कमिश्नरी के साथ सम्बद्ध कर दिया गया।

****